Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received:05/June/2023 IJRAW: 2023; 2(7):134-138 Accepted: 11/July/2023

राज्य को पुनः स्थापित करना: समकालीन विवाद

*[1]Teeka Ram

*[1]Ph.D. Scholar, Department of Political Science, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Vidya Vihar, Luchnow, Uttar Pradesh, India.

सारांश

राज्य एक ऐसा विचार है जो निरंतर बदलता रहा है। और लगातार अपने स्वरूप प्रकृति और अर्थ को गतिशील रखता है, और इसीलिए यहां पर ये जरूरी हो जाता है कि हम राज्य को समझने के लिए और मुख्य रूप से उसका सैद्धान्तिकरण करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण और विभिन्न विमर्शों और वाद–विवाद आदि को समझने की कोशिश करें क्योंकि राज्य एक गतिशील विशेषता लिए हुए है। ओर इसीलिए इसमें कई बाते स्वयं ही शामिल होती चलती है, जैसे उदाहरण के तौर पर राज्या के साथ सरकार, सरकार के साथ शासन, शासन के साथ सत्ता, और सत्ता के साथ शक्ति ओर ये सभी बाते आपस में गतिशील रहती है।

मूल शब्दः पूंजीवाद, उद्योगवाद, प्रशासनिक शक्ति (निगरानी), राष्ट्रराज्य, प्रतिबिम्ब समाज, असन्निहितता

प्रस्तावना

राज्य को पुनःस्थापित करने के सिद्धान्त को समझने के लिए आष्यक है कि हम तीन मुख्य प्रतिमानों के अंतर्गत राज्य के आविभ्रव का संक्षेप में वर्णन करें। इन प्रतिमानों को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। ये है। मार्क–1ए मार्क–2 एवं माक–3 [8] (भट्टाचार्य, 1990 op. cit.)।

मार्क–1: प्रतिमान ''निम्न राज्य'' को दर्शाता है, जो उदारवाी विचारधारा के अंतर्गत 1869–1930 में प्रचलित था। औद्योगिक क्रांति के बाद से अहस्तक्षेपी राज्य के सिद्धान्त को अपनाया गया, और यह 1930 तक बना रहा। मार्क्सवादियों ने भी ''निम्न या न्यून राज्य'' के विचार को विभिन्न कारणों से अपनाया (जब तक कि श्रमजीवी वर्ग का अधिनायकतंत्र स्थापित नहीं हो जाता, तब तक राज्य अंतरिम कानून व व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करेगा)।

मार्क–2: प्रतिमान या ''श्रेष्ठ या उच्च राज्य'' का सिद्धान्त 1930 व 1970 के दशक के मध्य प्रधान था। राज्य को मूल व आधारभूत कार्यों के संपादन हेतु श्रेष्ठ समझा जाता था, और पेरिधीय क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया जाता था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान आर्थिक प्रतिबंधों ने राज्य पर पुनः ध्यान केन्द्रित किया। इस प्रकार इस प्रतिमान को मार्क–3 द्वारा हस्तांतरित किया गया, जोकि दुबारा नव–उदारवादी परिप्रेक्ष्य के प्रभाव के अंतर्गत एक ''न्यून राज्य'' का सिद्धान्त था। पूर्वी यूरोपीय देशों में राज्यवाद के विघटन से इस विचार को एक नई प्रेरणा मिली। सरकार के थेचरवादी और रीगनवादी प्रकारों ने राज्य को आधारभूत कार्यों जैसे सुरक्षा, कानून व व्यवस्था को बनाए रखने, और कमजोर वर्गों की सुरक्षा करने तक ही सीमित कर दिया। जैसा कि पहले भी बताया गया है कि इस निर्देशन के सैद्धांतिक आधार लोक चयन दृष्टिकोण से लिए गए हैं।

मार्क–3: प्रतिमान, जिसे विश्व बैंक की रिपोर्टों में एक स्थान प्राप्त हुआ है, वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में सबसे स्थायी व दृढ़ बन गया है। इस स्तर को एक ह्रास का भी सामना करना पड़ा, जब राज्य को समर्थन देने वाली विचारधाराओं का अंत होते लगा, और राजनीतिक विश्लेषण की सभी रूप खत्म होने लगे। वास्तव में, इस बात की ओर संकेत किया गया कि अभिसरण (सिद्धान्त के रूप में ''समाप्तिवाद'' का अन्य रूम प्रभावी हो गया है इस दृष्टिकोण के अनुसार, पूर्वी यूरोप में साम्यवादी व्यवस्था अधिक बाजारोन्मुख नियमों को अपनाएगी, और पश्चिमी स्वतंत्रता को अधिक महत्व देगी; जबकि पश्चिमी व्यवस्था अधिक राज्यवादी और कल्याणोन्मुख बन जाएगी [9] ईटवेल व राइट, 1993।

क्या हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मार्क–4 प्रतिमान कभी नहीं आएगा? अथवा यह सत्य है कि ''न्यून राज्य'' का सिद्धान्त ही प्रचलित रहेगा? वर्तमान में ही हुए सैद्धांतिक और प्रायोगिक अनुभवों से यह संकेत मिलता है कि यह प्रतिकूल है। हालाँकि, बहुत लोगों के दृष्टिकोण के अनुसार, राज्य अब पहले की तुलना से अधिक शक्तिशाली हो गया है। आलोचनात्मक सिद्धान्त (फूको, हेबरमॉस), राज्य की सापेक्षिक स्वायत्तता सिद्धान्त (पुलन्तसाज, स्काकपॉल) तथा निर्भरता विरोधी लेखन (बिल वॉरेन) ने राज्य तथा उसके मार्क्स ओर नागरिक समाज के साथ संबंधों के अध्ययन की दिशा में नए द्वार खोले हैं।

डेविड ईस्टन ने सैद्धांतिक स्तर पर निम्नांकित चार कारकों को राज्य की वापसी/पुनःस्थापना हेतु उत्तरदायी ठहराया हैः

1. राज्य के चारों ओर राजनीतिक सिद्धान्त के विकास का महत्त्व
2. स्थायित्व के लिए उत्कंठा के लिए उत्कंठाा
3. बाजार द्वारा राज्य की संशोधन करने वाले शत्रु के रूप में पुनः खोज और;

*Corresponding Author: Teeka Ram

4. नीतिशास्त्र के अध्ययन करने वाले छोत्रों के लिए राज्य विश्लेषण का एक बहुत ही सरल व सुगम साधन है (देखें: हॉफमैन)। 1970 के आरंभिक दशकों में व्यवहारवादी विश्लेषण और ईस्टोनीयन व्यवस्था सिद्धान्त का स्थान एक राज्य–केन्द्रित सिद्धान्त ने ले लिया, जिसने राज्य को ''विश्लेषण के एक निर्धारित अवयव'' के रूप में स्वीकार किया।

सैमुअल हंटिंगटन ने ''राज्य'' शब्द का प्रयोग नहीं किया, परन्तु वे ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्हें राज्य की पुनर्स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने बताया कि किस प्रकार देश में अनेक सार्वजनिक संस्थाओं, जैसे राज्य के काग्र व विशेषताएँ समाज के लिए एक विशाल भेद स्थापित करनती है। वह सार्वजनिक संस्थाओं को केन्द्रित मंच पर लाए। हटिगटन के अनुसार, केवल वहीं पर जहाँ राजनीतिक संस्थात्मकवाद, राजनीतिक सहभागिता पर हावी हो जाता है, वहीं पर राजनीतिक हितों में एक स्थायी राजनीतिक कार्यप्रणाली का उद्भव हो सकता है।

एक अन्य विचारक जिन्होंने ''राज्य को पुनःस्थापित करने'' में महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह है थेड़ा स्काकपॉल। वह कहती है कि पश्चिमी सामाजिक विज्ञान में 1970 में दृष्टिकोण में परिवर्तन आया, समाज–केन्द्रित कार्य, जो राज्य को एक निर्भित कारक के रूप में देखते थे अब राज्य को एक स्वतंत्र कारक समझने लगे। स्काकपॉल के अनुसार, राज्य अपनी स्वायत्ता निम्नलिखित साधनों से प्राप्त करता है:

1. राजनीतिक कारकों संबंधी और अंतराज्यीय व्यवस्था के संचालन में निहित आवश्यकताएँ,
2. कानून व व्यवस्था के प्रति इसकी घरेलू जिम्मेदारी,
3. राजनीति व्यवस्थापकों के क्रियाकलाप; और
4. संकट के काल। वह यह भी कहती हैं कि राज्य का संपूर्ण ढाँचा समूहों के निर्माण, हितों की स्पष्टता और राजनीतिक क्षमताओं को प्रभावित करता है।

इस प्रकार ''राज्य को पुर्नस्थापित करने की प्रक्रिया'' को संस्थात्मकवाद व राजनीतिक विश्लेषण के आधारकी पुनः वापसी के रूप में भी देखा गया है, और राजनीतिक विश्लेषण का आधारभूत विषय के वामसी के रूप में भी, उदाहरण के तौर पर प्राधिकारके सामाजिक आधार व राजनीतिक के नैतिक आधार में देखा गया है। इससे पहले आधुनिकीकरण सिद्धान्त व निर्भरता सिद्धान्त, दोनों को ही प्रजातीयवाद के कारण नुकसान हुआ है। क्योंकि तृतीय विश्व को विकसित पश्चिमी प्रारूप की ओर प्रेरित किया गया है। वर्तमान समय में राज्य–उन्मुख विवेचन ने निम्नलिखित को पुनः स्थापित किया है।

- राज्य के प्राधिकार की परिधि व उसके आधार का विस्तृत विश्लेषण;
- अनुभवी व प्रतिदिन के जीवन में सत्ता के केन्द्र की खोज, न कि केवल सत्ता के प्रयोग पर केन्द्रण;
- सूक्ष्म–स्तर पर लोगों की स्थिति व निरंकुश सामाजिक क्रियाओं के प्रति सजगता;
- इटावाद से परे सामाजिक पुनर्विचार के वैकल्पिक तरीके; और
- राजनीतिक विज्ञान में उद्यमों का पुनर्निर्माण, विषयी पुर्नस्थापना, अरिस्तों के परास्नातमक विज्ञान की अवधारणा की तरह[10] (भट्टाचार्य, 2003)

जॉन डियरलोव समाज केन्द्रित विचारधाराओं की ब्रिटिश दृष्टिकोण से आलोचना करते हैं। उनके लिए राज्य को पुर्नस्थापित कम से कम पाँच विभिन्न तरीकों से किया जा कसता है। इनमें सम्मिलित है:

- निगमवाद में अध्ययन
- नव–मार्क्सवादी राज्य का सिद्धान्त
- लोक चयन एवं सार्वजनिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राज्यवादी परिप्रेक्ष्य
- राज्य की नव अधिकारवादी आलोचना और इसका राजनीतिक प्रभाव[11]

''राज्य की कार्यों'' तथा इसकी शक्तियाँ कम करने के संबंध में, बी. गॉय पीटर्स? 1994 यह महसूस करते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्रों को नियंत्रित करना बहुत ही मुश्किल है। राज्य को कई रूपों में पीछे हटाया गया है, वैसे–ही इसे कई क्षेत्रों में आगे भी लाया गया है। सरकार एक बहुत बड़ा ''उपयोग'' है, और यह लगातार वृद्धि करता रहता है। विकासशील देशों में सरकार को आवश्यक रूप से भावी आर्थिक वृद्धि के लिए पूँजी में विस्तार के प्रधान काकरक के रूप में कार्य करना चाहिए। विकसित अर्थव्यवस्थाओं मे सरकार मानव पूँजी में विस्तार के प्रधान कारक के रूप में कार्य करना चाहिए। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में सरकार मानव पूँजी के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकार की निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। किसी भी परिमाणा की दृष्टि से देखा जाए, लेकिन यह सच है कि सरकार पूँजी व्यय करती है, अधिक लोगों को रोजगार उपलब्ध कराती है, और अपने नागरिकों के जीवन पर व्यापक प्रभाव डालती है। वर्तमान वर्षों में, सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात अपने आकार व क्षेत्र को कम करने के अनेक प्रयासों को विफल करने में सरकार की समर्थता रही है। कुपोषण की बढ़ती संख्या, गरीबी, बेरोजगारी, श्रमिकों में तनाव, कमजोर सामाजिक सुरक्षा या नेटवर्क, य सब यह दर्शाते हैं कि निजीकरण, विनिवेश व निगमीकरण आदि भारत जैसे विकासशील देशों में कोई भी संतुष्ट परिणाम लाने में असफल रहे हैं।

यह भी ध्यान देना चाहिए कि विकासशील देशों में जहाँ राज्य के अनेक अधिकार होते हैं, वहाँ राज्य को बाजार की कुव्यवस्था को दूर करने, सेवाओं की गुणवत्ता की स्थापना करने, निजी उद्योगों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का निर्धारण करने, बाजार के लिए उपयुक्त कानूनी ढाँचे का निर्माण व संस्थात्मक विकास में वृद्धि करने, विकास की प्रक्रिया, पारदर्शिता का आश्वासन देने, तथा मानव क्षमताओं को सशक्त करने आदि कार्यों में भूमिका अवश्य निभानी चाहिए। रिचर्ड सी बॉक्स, 2003 के अनुसार, विकासशील देशों में राज्यय के संगठन किसी व्यवसाय की भाँति नहीं चलाए जा सकते हैं सरकार के कार्यों को तकनीकी–यांत्रिक बाजार कार्यों में सीमित या कम नही किया जा कसता है। नागरिकों को दिए जाने वाली सेवाओं उपभोक्ता उत्पादों की तरह बाजारीकृत नहीं की जा सकती है।

मोहित भट्टाचार्य, 1999 के अनुसार, तृतीय विश्व पद्धतिमूलक या सुव्यवस्थित व्यक्तिवाद के बजाय, समन्वायात्मक समुदायवाद की तलाश में है। प्रभात पटनायक, 2000 ने बिल्कुल ही अलग दृष्टिकोण व्यक्त किया है। उन्होंने विचार व्यक्त किया कि इस नए पैकेज को राजय का पश्चतगमन मानना गंभीर गलती होगी। यह उत्पादक और निवेशक के रूप में राज्य का पीछे हटना है, जिसका अर्थ पहली की विकास प्रक्रिया के राज्य पूँजीकरण को पीछे हटना तो जरूर है। लेकिन यह राज्य की बृहत् पूँजी के समर्थक के रूप में एक वैकल्पिक भूमिका को रेखांकित करता है।

पाश्चातय उदारवादी विचार, जो पहले राज्य के महत्व को कम करके आँकते थे, अब उन्होंने भी शासन के सकारात्मक पक्षों पर ध्यान देना शुरू किया है, जैसे प्रभावशाली कानूनी, न्यायिक व व्यवस्थित संरचना का निर्माण करना, पारदर्शिता का आश्वासन देना, राज्य के हस्तक्षेप को बाजार के अनुकूल करना, तथा मानव संसाधनों को सार्वजनिक नीतियों की प्राप्ति में सहायक बनाना। थैच्चर के ब्रिटेन में भी, जहाँ नव–उदारवादी आर्थिक रणनीतियों के प्रति प्रतिबद्धता देखने को मिलती है, और ट्रेड यूनियनवाद व सामाजिक चार्टरों के प्रति इसका एक घोषित विरोध है, हम राज्य हस्तक्षेपों और पूँजी व श्रम के मध्य अधिकाधिक सहयोग देख सकते है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ शुद्ध बाजार प्रतिस्पर्धाओं व

वर्गों में घने मनमुटाव ने पूँजी वृत्ति के लिए बड़ी लागतों को उत्पन्न किया है वस्तुतः कुछ आलोचक यह मानते है कि राज्य एक बार फिर से ''पुलिस राज्य'' या दाई राज्य बनने के खतरे से गुजर रहा है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में आतंकवाद से लड़ने के लिए बहुत सारे कठोर कानूनों के अतिरिक्त गैर कानूनी देशंतर गमन तथा कई तरह की सामाजिक समस्याओं की एक नई शासन पद्धति बनाई जा रही है (सूरूर, 2004) नवीन राज्य एक हितैषी संस्था के रूप में सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर नमनकारी दिखता है।

यह देखा गया कि पश्चिमी विकसित आकार में वृद्धि तथा लोगों के दैनिक जीवन में सरकार का हस्तक्षेप आदि से संबंधित विवाद बढ़ रहे है, जिसे कल्याण की वापसी विवाद कहा जाता है (भट्टार्य, 1999) यू.एन.डी.पी. की एक रिपोर्ट, 1997 में कहा गया है कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में ''सिकुड़ते राज्य'' ने मानव विकास में अवरोध पैदा किया है, जिनमें गरीबी की बढ़ती दर, तीव्र गति से बढ़ती आर्थिक व सामाजिक अर्थव्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य व सार्वजनिक शिक्षा का ह्रास तथा संस्कृति व पर्यावरण की चिंताजनक स्थिति शामिल हैं। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन की एक ताजा रिपोर्ट में कहा कि सहस्त्राब्दि के विकासात्मक लक्ष्यों की प्रापित नहीं की जा सकी है, क्योंकि बेरोजगारी एक रिकार्ड स्तर तक जा पहुँजी है, और नौकरियों में वृद्धि बहुत ही निराशाजनक है।

भारतीय संदर्भ में, राजय ने कभी भी पीछे हटने के कोई भी लक्ष्य नहीं दिखाए हैं। रजनी कोठारी की दश्टि में, आधुनिक समय में प्राधिकार व समाज के मध्य संबंधों के ढाँचे में तीन विवादास्पद अवस्थाएँ हैं। प्राप्ति, प्रत्येक प्रमुख न्यायिक–राजनीतिक सत्ता में एक –देशीय केन्द्र उभरता है, जिसके चारों ओर पहचान का निर्माण होता है, जिससे राजनीतिक विधादों का निर्माण होता है। द्वितीय, नए राजय केन्द्र आवश्यक राजनीतिक रूप से केन्द्र भाग बन जाते हैं, विशेष रूप से राष्ट्र बन जाते हैं और आंतरिक व बाह्य दोनों ही सीमाओं को परिभाषित करते हैं। तृतीय, जैसे ही राज्य ने परिधि पर रहने वाले लोगों की ओर विस्तार किया और आर्थिक व सामाजिक संघर्षों के विभिन्न रूपों से जूझने की कोशिश की, वैसे ही एक अधिकांश समाज की अवधारणा उत्पन्न हुई। इस समाज में एकरूपीकरण व मानवीकरण की ओर मुड़ने की प्रवृति हुई। इससे राजय के कार्यों में लगातार वृद्धि होती रही, तथा इसके शासकीय व नौकरशाही तथा साथ ही वाणिज्यवादी व कल्याणकारी कार्यों के मार्ग भी प्रशस्त हुए।

समाज में केन्द्रिकरण, राष्ट्रीयकरण व सामाजिक विभेदों के समरूपीकरण की तीन आधारभूत प्रवृत्तियाँ राष्ट्र–राज्य की बाहरी भूमिका है। इसने राज्य को यह जोर देने पर मजबूर किया है कि यह राष्ट्रों के विश्व मे प्रत्येक राष्ट्र का एकमात्र वैध प्रतिनिधि होगा, तथा इस उद्देश्य से कि वह लक्ष्य होगा कि सीमा पर बार्डर की स्थिरता, इसकी अर्थव्यवस्था व संस्कृति की रक्षा के लिए यह एक राष्ट्रीय सुरक्षा के यंत्र के रूप में निर्माण करेगा।

1930 में स्वयं जॉन कीन्स, कार्ल पोलनयी व हेरोल्ड आईनिस ने राज्य की मध्यस्थता के लाभों को सामने रखा था। समकालीन संदर्भ में भी हम उनके विश्लेषणों से प्रेरणा ले सकते हैं। इनका मानना था कि बाजार स्व–संगठित होने में समर्थ नहीं है, साथ ही यह समानता के स्तर पर भी नहीं पहुँचता। कीन्स का प्रधान आर्थिक परीक्षण यह समझना था कि निजी अर्थव्यवस्था में अधिकाधिक पूँजी लगाना, सार्वजनिक ढाँचे में निवेश व निवेशकों व उपभोक्ता के विश्वास को बनाए रखना आदि, कुछ ऐसे साधन सरकार के पास उपलब्ध हैं, जिनसे वे बाजार अर्थव्यवस्था के नकारात्मक कार्यों को ठी कर सकती है। पोलनयी यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या समाज को केवल माँग को व पूर्ति के नियम पर आधारित बाजारों द्वारा संचालित या शासित किया जा सकता है। उनका विश्वास था कि वस्तुओं का प्रतिपादन बाजार द्वारा कुछ विशेष लाक्षणिक उत्पादों में ही संभव है, आर्थिक जीवन के आधारभूत तत्वों– श्रम, भूमि व पूँजी में नहीं। हेरोल्ड आईनिस के अनुसार, संकुचित प्रतिस्पर्धी रणनीतियों के आधार राजें को पड़ोसियों से भीक्षा माँगने की नीतियाँ अपनाने के लिए बाध्य करती है, तथा बिना पर्याप्त संस्थागत सुरक्षा के, प्रमुख अर्थव्यवस्थाएँ ''आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थओं का महत्त्वपूर्ण केन्द्र'' बन सकती है।

इस प्रकार राज्य को सदैव बाजारीकरण के नकारात्मक पहलुओं के प्रति सुरक्षा व निगरानी का कार्य करना पड़ता है।, और हस्तक्षेप करना पड़ता है। अब इसे बहुकार्यी होना पड़ेगा। समीर अमीन दो विकल्पों की बात करते हैं, प्रथम य तो हम विश्व की संरचनातमक अनुसरण प्रोग्राम की अधीनता को स्वीकार कर लें, अथवा द्वितीय पारस्परिक सहयोग से एक बहु–केन्द्रीय विश्व का निर्माण करें। कोरिया जैसे देशों में उत्तम रोजगार, बीमा, सार्वजनिक कार्य, सामाजिक सुरक्षा, जीविका सुरक्षा कार्यक्रम आदि कई सुविधाएँ हैं, ताकि प्रतिस्पर्धा व ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण किया जा सके। इस प्रकार का व्यवस्थापित आधार वैश्वीकरण के दौर में अधिक अपनाने योग्य है। चाइना ने भी दोहरी प्रगति दर्शायी है। एक तरफ इसने मुक्त बाजार नियमों व नीतियों को अपनाया है, जैसे निजीकरण और दूसरी तरफ इसने अपनी सामुदायिक विकास की संकल्पना, सामाजिक कृषि व लघु औद्योगिकी की निरंतरता को भी बनाए रखा है।

यह याद रखने की आवश्यकता है कि तृतीय विश्व में राज्य को पुनर्स्थापित करने की प्रक्रिया को किसी आंतरिक दबाव व समस्याओं द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया गया है। यह ब्रेटनवुड संस्थाओं (विश्व बैंक व अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) के संरचनात्मक अनुसरण कार्यक्रम द्वारा तृतीय विश्व पर थोपा गया है। इसलिए, हमें एक ऐसे प्रशासनिका प्रतिमानन की खोज करनी होगी, जो विकासशील देशों के उद्देश्यों को पूरा करें, न कि अष्तर्राश्ट्रीय सहयोग की ओर झुके। एक अन्य मुद्दा जिसका हल निकालने की आवष्यकता है, वह यह है कि विकासशील देश अब तक सशक्त राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासनिक संस्थाओं, वैश्वीकरण की गति के साथ चलने के लिए ढाँचों व प्रक्रियाओं का निर्माण करने में सक्षम नहीं हुए है। इस प्रकार, यदि सरकार ही लक्ष्य प्रतिपादित करने में समर्थ नहीं हुई है, तो कया बाजार परिणाम दर्शा पाएँगे? यह प्रश्न महतवपूर्ण हो जाता है, क्योंकि विकासशील देशों में संस्थागत और व्यवस्थात्मक ढाँचा एक समान ही रहता है। निजी प्रतिष्ठानों में नौकरशाही व्यवस्था का क्या होगा? नौकरशाही की विकृतियों की हर संगठन में उभरने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार तृतीय विश्व के संदर्भ में राज्य को पुर्नस्थापित करने की प्रक्रिया एक अनुचित रणनीति है, क्योंकि बाजार–आधारित राजय विकासशील देशों के लिए सहायक नहीं हैं। इन देशों में समानता व न्याय ही आदर्श रूप में वस्तुओं व सेवाओं की कुशल प्रतिपादकता का परिणाम होना चाहिए।

राज्य की भूमिका सरकार के उद्देश्यों के लिए राजनीतिक प्राधिकार उपलब्ध कराना है, और यह बाजार अनुकूल व पूँजीवादी अनुकूल संस्थाओं को कम नहीं कर सकता। व्यवस्थात्मक परिप्रेक्ष्य में, कल्याणकारी राज्य की मूल महत्ता है, क्योंकि बिना इसके राष्ट्रीय पहचान बनाए रखना असंभव है एक सहभागी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था पारदर्शिता व उत्तरदायित्व पर आधारित होती है, तथा इसे कानून के शासन द्वारा सहमति प्रदान की जाती है, और कुशल प्रशासनिक संस्थाओं की आवष्यकता क्रमिक विकास व वैश्विक शक्तियों/दबावों के साथ सकारात्मक व्यवहार, दोनों ही के लिए होती है। राज्य के वृहत्त आडंबर तथा राज्य की क्षमता के बारे में उम्मीद के बारे में जोएल एस. मिगदल कहते है कि इस सोच ने जन संस्थाओं तथा नीतियों की विफलताओं को ढक दिया है। राज्य को किस हद तक जनता से उम्मीद रखनी चाहिए, इस बात पर विद्वानों ने राज्य के लक्ष्य तथा राजय की उपलब्धियों के बीच बड़े अंतर को गहरे तरीके से बताने का प्रयास किया है।

वास्तव में, यह वाद–विवाद केवल राज्य बनाम बाजार के आस–पास केन्द्रित नहीं होना चाहिए। मुद्दा यह नहीं है कि एक को दूसरे से स्थानापन्न किया जाए। दोनों ही महत्वपूर्ण हैं, और इन्हें सकारात्मक रूप से एक दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए,

और बाजार को स्थापित किया जाए। वास्तविक मुद्दा एक शक्तिशाली राजय स्थापित करने का है, जिसका एजेंडा बहुत ही विस्तृत हो और जिसे विभिन्न प्रकार से निर्मित व क्रियान्वित किया जाए। बाजार बनाम राज्य के विवाद में, वास्तविक राज्य न तो किसी ठोस प्रकार का और न ही उदार व परोपकारी नीतियों के दबाव में अभेदी व्यवस्था के अधीन होता है। व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार, राज्य न तो सार्वजनिक कल्यास और न ही व्यक्तिगत हितों का आशावादी होता है। यह विवादों के निपटारे, समूहों के मध्य मोल–तोल को बनाए रखता है और कभी–कभी स्वयं ही प्रधान होता है। वैश्वीकरण के संदर्भ में, राज्य की भूमिका पर विस्तृत चर्चा इसके कल्याणकारी कार्यों के प्रसार, विवादों में मध्यस्थता व नेटवर्क संगठन की भूमिका को समझने में मदद करेगी।

वैष्वीकरण के संदर्भ में राज्य की भूमिका

जैसाकि हमने इस इकाई में पहले पढ़ा है, पिछली दो शताब्दियों से वैश्वीकरण राष्ट्र–राज्यों के नियमों को लगातार परिवर्तित कर रहा है। राजय की पारंपरिक हितो के संरक्षक व प्रसारक की भूमिका भी वैश्वीकरण की शक्तियों के प्रभाव के अंतर्गत आ गई है, जेसे कि अनेक अन्य सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संस्थाओं ने समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों का सामना करने का उत्तरदायितव निभाना शुरू कर दिया है। प्रतिस्पर्धी राजय की उत्पत्ति से लोक–प्रशासन की बाजार आधारित विचारधारा ही प्रधान है, जिसकी व्याख्या एक वस्तुतीकरण एजेंट के रूप में की जाती है।

इस प्रकार राजय पर पूर्व चर्चाओं से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि पिछली सदी के दौरान आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप इसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है। जैसाकि अनेक शोधशास्त्री कहते हैं कि यह स्वरूप इसलिए बदला है, क्योंकि व्यापार के अंतर्राष्ट्रीयकरण, तकनीकी क्रांति, माइक्रो या सूक्ष्म अर्थव्यवस्था विश्लेषण, सीमा संबंधी पुनः परिभाषा, विश्व सुरक्षा व्यवस्था का मानवीकरण जैसे कारकों ने समय और फासले की सीमाओं की प्रमाणिकता के महत्त्व को कम कर दिया है। अब समस्त विश्व अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक द्वारा प्रचलित वाशिंगटन सहमति के संरक्षण में आ गया है।

एक केन्द्रित नियोजित राज्य से बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन को अनेक शंकाओं का सामना करना पड़ता है, जैसेकि वैश्वीकरण के संदर्भ में राज्य की महत्ता व प्राधिकार, इसके साथ ही राज्य, बाजार व समाज के मध्य संतुलन बनाए रखना भी आवश्यक है। यह संकेत दिया जाता है कि वैश्वीकरण ने राजय की नीतियों, संस्थाओं व कार्यों पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है। प्रत्येक राज्य की आर्थिक परिस्थितियों के विस्तार तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया के प्रति राज्य के खुलेपन के स्तर के साथ ही इसके प्रभाव में विभिन्न आती है। अनेक आलोचक कहते हैं कि वैश्वीकरण के संदर्भ, में राज्य निजी क्षेत्र को समृद्ध बनाने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक प्रतिनिधि बन गया है, जो राज्य की संपत्ति के विक्रय व कम मूल्य पर संसाधनों को उपलब्ध कराकर निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देता है। निजी निवेश, ब्याज दर, व्यापार व वाणिज्य के लाभ में राज्य नीतियों द्वारा वृद्धि करते हैं, परंतु केवल कुछ विशिष्ट अधिकारयक्त निजी क्षेत्र ही इसमें शामिल होते हैं।

आलोचकों द्वारा अक्सर वैश्वीकरण के नकारात्मक पहलुओं को ही उठाया जाता है। यह सिद्ध हो गया है कि वैश्वीकरण ऐसा कोई वादा नहीं करता कि परम्–राष्ट्रीय संप्रभुत्ता द्वारा प्रचारित नई विश्व व्यवस्था पूँजीवाद के साथ अधिक लोकतंत्र, समानता या सुरक्षा प्रदान करेगी। पूँजीवाद व सामाजिक लोकतंत्र के मिश्रण हेतु राज्य, निजी निगमों, समुदायों व व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के सही समन्वय की प्रबल आवश्यकता सदैव रहेगी।

वैश्वीकरण के सकारात्मक पक्ष भी हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वैश्वीकरण ने नए संपर्कों व संबंधों के निर्माण द्वारा क्षेत्रों की दूरी को कम कर दिया है। विकासशील देशों के अंतर्गत राज्य अब एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में कार्य कर सकते हैं और अपने कार्यक्रमों के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। इसके बलावा, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ अन्य उपेक्षित विषयों को भी प्रकाश में लाई है, जैसे मानव अधिकार, जेन्डर, टिकाऊ या सतत् विकास आदि, जाकि सुविधाहीन, गरीब व कमजोर वर्गों के साथ जुड़े हुए है। इन क्षेत्रों में कार्य करने हेतु राज्य की क्षमता एक आवश्यक परिस्थिति है, ताकि वैश्वीकरण द्वारा प्रदान किए जाने वाले अवसरों का उपयोग किया जा सके, तथा समाज के योग्य वर्गों के हितों को सुरक्षित व प्रसारित किया जा सके। राज्य गरीबी–निवारण, पर्यावरण संरक्षण, मानव–सुरक्षा को प्रचारित करने व सामाजिक समता व नैतिकता को प्राप्त करने में राज्य एक समालोचक भूमिका निभा सकता है।

विकसित व शक्तिशाली राजय वैश्वीकरण के नकारात्मक पहलुओं का विरोध करते हैं। विशाल आर्थिक व सामाजिक अंतर्निर्भरता राष्ट्रीय निर्णय–निर्माण प्रक्रिया को दो मूल तरीकों से प्रभावित करती है। यह कुछ राष्ट्रीय स्तर के निणर्यों को स्थानीय सरकार के स्तर पर स्थानांतरित करने का प्रयास करती है। इसके साथ–साथ यह अपर्याप्त राज्य सामर्थ्यता से उत्पन्न समस्याएँ और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। वे राज्य जिनके पास अधिक शक्तिशाली योग्यता है वे अंतर्राष्ट्रीय एजेंडे के निर्माण में अधिक राजनीतिक प्रभाव रखते हैं, तथा बहुभुजी प्रबंधों के गहन जालल या नेटवर्क को संचालित करते हैं, जोकि वैश्विक आर्थिक पारस्परिकता के कारण उत्पन्न होता है। कमजोर राज्य विशेषकर विकासशील देशों की, इसमें कम सक्रिय भूमिका होती है।

आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के अध्ययन ने यह संकेत दिया है कि मुकत व अधिक खुजी बाजार अर्थव्यवस्थाएँ विभिन्न देशों के विकास के सभी स्तरों पर आर्थिक व सामाजिक दोनों ही प्रकार के लाभ प्रदान करती है। संभावित लाभ निम्न हैं:

- वस्तुओं व सेवाओं की प्राप्ति में व्यक्तियों को चयन की अधिक स्वतंत्रता तथा विशिष्टीकरण व विनियमन;
- विश्व व्यापार में तुलनात्मक सुविधाएँ;
- अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में कार्यरत लोगों की अधिक आय;
- वस्तुओं व सेवाओं की अधिक उपलब्धता व कम मूल्य;
- जोखिमों या खतरों में विशाखन लाने के अवसर;
- कम लागत में पूँजी तक पहुँच;
- संसाधनों का अधिक कुशल व उत्पादक बँटवारा;
- ज्ञान व अभिज्ञता का आंतरिक स्थानांतरण।

यह कहा जाता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया अपरिवर्तनशील है, अगर इसके कई विकल्प नहीं हैं तो हमें इसके अंतर्गत ही इसके विकल्प खोजने होंगे। अली फराजमंद कहते हैं कि वैश्वीकरण राज्य व लोक प्रशासन का अंत नहीं करता। राज्य ही अपने नागरिकों के हितों तथा आर्थिक व सामाजिक विकास के उपयुक्त प्रबंध का केन्द्र रहता है। राजय उन्नत आर्थिक एकीकरण के लिए उपर्युक्त नीतियाँ ग्रहण करने के लिए भी उत्तरदायी होता है। एक नई वैश्विक चुनौती ने लोक प्रशासन के शोध, व्यवहार व अध्ययन के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया है। लोक–प्रशासन ने मानव सभ्यता के एक नए चरण में प्रवेश किया है, जिसका भविष्य वैश्वीकरा व आधिपत्यवादी विश्व व्यवस्था द्वारा प्रकाशित व अंधकारमय दोनों ही बताया गया है। यह विकासशील देशों पर है कि ऐसा विकासात्मक रणनीतियों को अपनाए, जो वैश्वीकरण प्रक्रिया के नकारात्मक व सकारात्मक, दोनों ही पहलुओं को अनुकूल रूप से व्यवस्थित कर सके। यह देखना है कि नए परिदृश्य में स्वयं को ढालने के लिए राज्य किस प्रकार अपने को परिष्कृत करता है।

बॉब जोसम ने नव उदित नियंत्रणोमुख पद्धति को ''शुम्पीटरवादी वर्कफेयर राज्य'' कहा है। उनके अनुसार, राज्य पहले जेसे ही नवीन पद्धतियों व राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि का प्रचार करेन में व बाजार प्रणालियों को रणनीतिक व्यवधानों के साथ संयोजित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। पॉल स्ट्रीटन कहते हैं कि अगर ये

केवल असफलताओं को सही करने का मुद्दा है, तो यह कार्य अपेक्षाकृत आसान है। परंतु, यदि बाजार द्वारा उत्पन्न संकेत भूमि, संपदा व आय के बहुत ही असमान वितरण पर आधारित है, तो इन संकेतों के प्रतिवादन में बाजार की सफलता है, जिसने की समस्याओं को जन्म दिया है। जैसा कि कहा जाता है कि बाजार–प्रतिरूप कुछ कार्यों के लिए पर्याप्त व वांछित होता है, जबकि यही प्रतिरूप अनेक सेवाओं के लिए पूर्ण रूप से आयोग्य व अनुचित होता है। इसी प्रकार, सहभागी प्रतिरूप शहरी नियोजन या पर्यावरण संबंधी मुद्दों के लिए सही होगा, परन्तु अनेक दण्ड न्यायिक कार्यक्रमों के लिए परेशानियाँ उत्पन्न करेगा। अस्थायी प्रतिरूप या मॉडल ही अनेक विवादास्पद मुद्दों के लिए उचित होगा, जैसे ड्रग कानून कार्यान्वयन, साथ ही विपदा–समाधान जैसे अनित्य मुद्दे पेरी, 1994।

एंथोनी गिड्डन्स, 1997 ने लोकतंत्र को बढ़ाने हेतु सकरकार और नागरिक समाज की एजेंसियों में साझेदारी का एक विस्तृत केस बनाया है। यह बहुत ही कठिन है, क्योंकि निगमवाद राज्य या प्रतिस्पर्धी राज्य के आगमन से अव्यवस्था व निजीकरण के कारण ''सार्वजनिक क्षेत्र'' व ''नागरिकों'' के लिए स्थान धीरे–धीरे सिकुड़ता जाता है। इस प्रकार के राजय के आर्थिक प्रस्तावों को अधिक विस्तृत करना होगा, कम से कम इन्हें सामाजिक समता व न्याय के मूल्य पर प्रेरित नहीं किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

यदि हम राज्य का उद्विकसीय दृष्टिकोण देखे तो पता चलेगा की राज्य निरंतर कैसे रूपान्तरित होता हुआ आया है, और निरंतर गतिशील बना हुआ हो उदाहरण के तौर पर पश्चिम में जब नगर राजय की अवधारणा का उपयोग किया जाता था तो उसको अर्थ एक छोटी प्रशासनिक इकाई थी। पर वही जब रोमन साम्राज्य का विकास होता है, तो हमे राष्ट्र–राज्य की अवधारणा मजबूत होती हुई दिखाई देती है। क्योंकि वही अगर हम नगर राज्य और रोमन साम्राज्य की तुलना करे तो पता चलता है कि नगर राज्य की अवधारणा अधिक स्थानिय और शासन अधिक विकेन्द्रीकृत प्रतित होता था, और वही रोमन साम्राज्य एक तरीके का परिसंघ था, जिसके अन्दर बहुत सारे शक्ति केन्द्र थे। पर इस समय राष्ट्र राज्य को प्रभावित करने वालो एक ओर सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा जिसे हम दो तलवारों के सिद्धान्त से जानते हैं। तो यहां फिर भी हम राष्ट्र–राज्य की कुछ विशेषतायें देख सकते है। जैसे राष्ट्र राज्य के लिए एक भू–भाग का होना और राष्ट्र के लिए निरजातिय का होना और यहां पर एक सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि निरजातीयता के आधार पर सत्ता प्रभावित होती थीऔर इस आधार पर हम कह सकते हैं, की निरजातीयता एक छोटी प्रशासनिक इकाई बन गई है वही अगर हम इस सन्दर्भ में भारत में उपनिवेशी शासन को देखे तो उन्होंने भारत में सत्ता का हस्तान्तरण न करने का जो तर्क दिया तो ये था कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, और इसी आधार पर भारत में द्वि–राष्ट्र का सिद्धान्त मजबूत हो गया था, और जिसके आधार पर इस क्षेत्र का विभाजन कर दिया गया था, इस आधार पर हम कह सकते है, कि राष्ट्र–राज्य रोमन साम्राज्य की तुलना में छोटे थे पर वही नगर राज्य की तुलना में बड़े थे, पर वही राष्ट्र राज्य के साथ एक भू–भाग की पहचान और केन्द्रिकृत सत्ता की अवधारणा पूंजीवाद की विकास के साथ हुई और इसीलिए सत्ता की अवधारणा को भी स्पष्ट रूप से समझना जरूरी हो जाता है, और इस प्रकार राष्ट्र–राज्य एक पूंजीवाद की संस्था के रूप में उभरती है, क्योंकि पूंजीवाद को अपने विकास के लिए और अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए एक केन्द्रिकृत सत्ता की आवश्यकता होती है, और हम कह सकते है, कि यही वो कारण था जिसकी वजह से साम्रराज्यवादी शासन ने भारत में आधुनिक राष्ट्र राज्य की पृष्टि भूमि तैयार की है ओर ये साम्रराज्यवादी शासन एक तरीके का पूंजीवादी शासन है, जैसा की लेनिन के कहा था, वही अगर हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र राज्य की अवधारणा को देखे तो उसका विकास वेस्ट फेलिया संधि से 1648 में हुआ ओर ये वो संधि है जिसके द्वारा यूरोप में 30 साल की धार्मिक लड़ाई समाप्त को गई। और तब से लेकर लगभग दूसरे विश्व युद्ध तक यदि व्यवस्था बनी रही और इसी वेस्टफेलियन मोडल की जांच करके डेविड हेल्ड ने कुछ महत्वपूर्ण बाते बताई हैं जिसमें से कुछ बातो की चर्चा यहा करना आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एलथ्यूज़र, एल, 1971, "आइडियोलॉजी एंड आइडियोलॉजिकल स्टेट एपेरेट्स" (Ideology of Ideological State Apparatus) इन एल, एलथ्यूसर (ई.डी), लेनिन एंड फिलोसॉफी एंड अदर एसेस (Lenin and Philosophy and Other Essays), एन एल बी, लंदन।
2. बैन्जामिन, आर. एंड एस. एलकिन (ई.डी), 1985, द डेमोक्रेटिक स्टेट (The Democratic State), कनसास यूनिवर्सिटी प्रेस, कनसास।
3. बोज़, डेविड, 1997, लिबरटरेनिज्मः ए प्राइमर (Libertarianism: A Primer)] द फ्री प्रेस, न्यू यॉर्क।
4. कॉरनॉए, एम, 1984, द स्टेट एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी (The State and Political Theory)] एन.जे. प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिन्सटन।